वनों में भागीदारी की रफ्तार

राजीव कटारा

हरदा में नर्मदा के किनारे बसे हंडिया गांव से संयुक्त वन प्रबंध यानी जेएफएम की शुरुआत हुई थी। तब 1991 में उसकी नींव डाली थी ब्रजमोहन सिंह राठौर ने। उस वक्त वह वन मंडल अधिकारी यानी डीएफओ थे। फिलहाल वह सिवनी में वन संरक्षक हैं। उनका मानना है कि अब तो साबित हो चुका है कि जेएफएम जरूरी है। उसकी रफ्तार कुछ कम हो सकती है, लेकिन काफी हद तक वह कामयाब है। हालांकि 1991 में हरदा से मध्यप्रदेश में जेएफएम= की शुरुआत हो गयी थी। लेकिन कायदे से राज्य मेंउसका काम 1995 के बाद ही आगे बढ़ा। केंद्र सरकार के दिशा-निर्देशों को राज्य सरकार ने आगे बढ़ाते हुए जेएफएम पर जोर दिया। फिलहाल राज्य में वन समितियों की तादाद लगभग 15 हजार हो चुकी है। दिसंबर 2002 तक14073 वन समितियां थीं। बैतूल में 632, बालाघाट में 465 और हरदा में 150 समितियां बन चुकी थीं। राज्य के 60 हजार वर्ग किलोमीटर जंगल का इलाका जेएफएम के तहत है। यह राज्य के कुल 63 फीसदी जंगल के इलाके को समेटता है। 17 लाख से ज्यादा परिवार उससे जुड़े हुए हैं। भारतीय वन सर्वेक्षण के आंकड़े बताते हैं कि इन वन समितियों को वन के काम से जोड़ने के बाद कुल वन क्षेत्र बढ़ा है। 1999 की रिपोर्ट 376 वर्ग किलोमीटर की और 2001 की रिपोर्ट में 2128 वर्ग किमी. की बढ़ोतरी दर्ज हुई। हालांकि बालाघाट में 1997 के मुकाबले 56 किमी. वन घटा। उसकी वजह वहां के वन संरक्षक ब्रजेश कुमार मिश्र नक्सली गतिविधियां मानते हैं। लेकिन बैतूल में ही इन सालों में 34 किमी. वन बढ़ा। हालांकि खुला वन एक किमी. घटा, लेकिन घना वन 35 किमी. बढ़ गया। हरदा का आंकड़ा तो नहीं मिला। लेकिन वहां के वन मंडल अधिकारी अतुल खेड़ा के मुताबिक वन अगर नहीं भी बढ़ा, तो हमने उसे उसी स्तर पर बनाये रखा। दरअसल, हरदा को होशंगाबाद के हिस्से के तौर पर देखा जाता है। वजह यह कि उसे जिला बने बहुत साल नहीं हुए। होशंगाबाद में 1997 की तुलना में वन 23 किमी. बढ़ा है।

भले ही दिबर और बांस की शुद्ध कमाई में से एक हिस्सा वन समितियों को देने की दिग्विजय सिंह सरकार की मुहिम को राजनीति करार दिया जाये। लेकिन अगर वह हिस्सा आज वनवासियों को मिल रहा है, तो उसके पीछे कहीं न कहीं जेएफएम है। बैतूल दक्षिण के डीएफओ चरनजीत सिंह मान उसे जेएफएम के लिए क्रांतिकारी बताते हैं। अगर राज्य सरकार इस साल से लकड़ी और बांस की कमाई का शुद्ध लाभ पूरा का पूरा वन समितियों को देने की बात से पीछे नहीं हटती है, तो सचमुच ऐतिहासिक होगा। आखिर कब से जल, जंगल और जमीन का इंतजार कर रहा है आदिवासी।

अभी सिर्फ मंडला में ही सरकार ने वन समितियों को वह हिस्सा बांटा है। वह तो सोनिया गांधी की वजह से बंट गया। लेकिन बाकी जिले अभी उस पैसे की बाट जोह रहे हैं। जंगल से जुड़े लोग जबर्दस्त गरीबी झेल रहे हैं। वन की कमाई में हिस्सेदारी मिलने के बाद उसकी जिंदगी में बदलाव आनेवाला है। लेकिन अभी पैसा मिले तो सही। केंद्रीय पेट्रोलियम राज्यमंत्री. सुमित्रा महाजन कह भी रही थीं कि चुनाव के साल में यह शिगूफा छोड़ा गया है। चुनाव पास आते ही पैसा भी बंट जाएगा। लेकिन सौ फीसदी टिंबर और बांस के हिस्से की बात को वह मजाक ही समझती हैं। वन अधिकारी भी दबी जुबान से उसे स्टंट मानते हैं। एक वन संरक्षक के मुताबिक इस साल की कटाई के मुनाफे का फैसला अगले साल होना है। तब न जाने कौन सी सरकार हो? अगर यह सरकार भी रहती है, तो पुनर्विचार का अधिकार तो उसके पास है ही न।

1991 के दिशानिर्देशों के बाद काम तो शुरू हो गया। धड़ाधड़ समितियां भी बन गयीं, लेकिन उनकी कानूनी हैसियत क्या है? वनगांवों पर गंभीरता से काम करनेवाले एकता परिषद, बैतूल के अनिल गर्ग कहते हैं कि ये समितियां वन विभाग की शह पर चल रही हैं। ये किसी कानून से नहीं बंधी हैं। ये तो निर्देश पर चल रही हैं। सरकार बदल गयी, तो ये निर्देश बदल भी सकते हैं। सरकार के एक फैसले से ये ध्वस्त हो सकती हैं। डॉ.धर्मेंद्र वर्मा बैतूल उत्तर के वन मंडल अधिकारी यानी डीएफओ हैं। एक अधिकारी के तौर पर तो वह जेएफएम को देख ही रहे हैं। उन्होंने अपनी पीएचडी भी उसी विषय में की है। डॉ. वर्मा कहते हैं कि अब सरकार चाह कर भी इसकी दिशा को नहीं बदल सकती। जेएफएम ने वन अधिकारियों और वनवासियों को लोकतांत्रिक प्रक्रिया के तहत साझेदार बनाया है। जेएफएम का सफर तो अभी शुरू ही हुआ है। कानून भी धीरे-धीरे बन ही जाएगा। हां, अगर कानूनी हैसियत बने तो किसी को क्या ऐतराज हो सकता है। लेकिन ऐसा नहीं है कि उसके कोई नियम ही न हों। समितियों की एक पूरी नियमावली है। उसीके तहत सारे काम होते हैं। चरनजीत मान कहते हैं कि उन्होंने शुरू में करार वगैरह पर बहुत ध्यान दिया था। लेकिन वह चला नहीं। इन लोगों ने जिंदगी में पहली बार बैंक की पास बुक देखी है। ज्यादातर लोग दस्तखत नहीं कर पाते। उनसे अचानक करार की बात कैसे की जा सकती है। यह तो शहरी नजरिये से जेएफएम को देखना हुआ।

जेएफएम के कानूनी पहलू पर जरूर देखा जाना चाहिए। लेकिन इतना तय है कि उसके आने से वनवासियों में फर्क पड़ रहा है। बैतूल की कोकरू वन समिति के अध्यक्ष हीरामन का कहना था कि जिन परिवारों को वन सुरक्षा और काम के लिए लगाया है, उनकी जिंदगी तो चमन हो गयी है। महाराष्ट्र की सीमा पर बसे कोकरू आदिवासियों के इस गांव में 70 परिवार हैं। उसमें से 20 परिवारों को कॉफी बागान वगैरह के काम में लगाया गया है। उन्हें हितग्राही कहा जाता है। ये सभी परिवार गरीबी रेखा के नीचे वाले हैं। इनका चयन गांव वन समिति ने ही किया है। बाकी गांव वालों को जब तब काम दिया ही जाता है। हीरामन ही बताता है कि हर गांववाला हितग्राही होना चाहता है। जो नहीं हो पाते, उन्हें जलन होती है। हर परिवार को 12 सौ रु. दिये जाते हैं।

जेएफएम और वन समितियों के आने के बाद उससे जुड़े गांवों में बदलाव आ रहा है। बरेठा वन समिति की उपाध्यक्ष गजरीबाई का कहना था कि पहले साल में तीन-चार महीने पूरा का पूरा गांव मजदूरी की तलाश में दूसरे जिलों में चला जाता था। सिर्फ बूढ़े लोग ही रह जाते थे। वन वालों ने मिल कर जबसे ये काम किया है, तब से थोड़े से लोग ही गांव छोड़ कर जाते हैं।

हरदा में आदिवासियों के बीच काम करने वाले अभिनव ने कहा था कि वन विभाग इन लोगों को न्यूनतम मजदूरी से भी कम देता है। धार गांव में बुजुर्ग बादामी लाल उइके से मैंने न्यूनतम मजदूरी के सिलसिले में पूछा था। उसे जानकारी ही नहीं थी कि यह न्यूनतम मजदूरी क्या है? उसने कुल मिला कर यह जरूर कहा था कि अब भी चल रहा है, लेकिन 15 सौ रुपये हो जाते तो सब ठीक हो जाता। यह तीन सौ रुपये बढ़ाने की बात लगभग हर गांव के लोगों ने कही। हीराबाड़ी की शारदा ने शिकायती लहजे में कहा कि एक तो पैसा कम है, वह भी देरी से मिलता है। वन अधिकारियों का कहना था कि हम उन्हें तकनीकी तौर पर नौकरी नहीं दे रहे। हम तो एककाम के सिलसिले में उन्हें जोड़ते हैं। उसका पैसा देते हैं। फिर वे लोग यही काम नहीं करते। वे खेती कर सकते हैं। कुछ और काम भी कर सकते हैं। मान लीजिए चिरौंजी या आंवला लगाने के काम में लोगों को जोड़ा गया। तो जब भी फल आएगा, उन्हीं का हो जाएगा। फिर हमारे पास जितना भी बजट है, ज्यादा से ज्यादा परिवारों को उसका लाभ देना चाहते हैं। ये पैसा भी तो हम वन समिति के जरिये ही देते हैं।

जेएफएम के जरिये सबसे बड़ा बदलाव गांव वालों और वन विभाग के रिश्तों में आया है। राठौर कहते हैं कि पहले यह रिश्ता कुछ-कुछ चोर-सिपाही जैसा था। आपसी अविश्वास का रिश्ता था उनमें। अब दोनों में सहयोग और विश्वास का रिश्ता बनता जा रहा है। हरदा में जब जेएफएम शुरू हो रहा था, तो आर.सी.साकल्ले वहां डिप्टी रेंजर थे। उनके मुताबिक शुरू में गांव-गांव जा कर माथापच्ची करनी पड़ती थी। कई बार तो हमें गांव से भगा भी दिया गया। लेकिन एक बार उनका विश्वास जम गया, तो फिर कोई दिक्कत नहीं आयी।

गांव वालों के लिए गार्ड ही वन विभाग का अहम प्रतिनिधि होता है। पहले वह खौफ जगाता था। हरदा के बड़वानी गांव के समरू बताते हैं कि पहले जब गार्ड गांव में आता था तो हम दुबक जाते थे। अब तो वह हमें बड़े भाई सा लगता है। हमारे सुख-दुख में साथ रहता है। वहीं कोकरू के गार्ड अरुण कुमार रायकुंवर कहते हैं कि अब हमें डर नहीं लगता। पहले अकेले पड़ जाते थे। अब हमें पता है कि 50-100 लोग हमारे साथ हैं। यही वजह है कि वनों में चोरी की घटनाओं में कमी आयी है।

सबसे पहले इस साझीदारी का काम वनों की सुरक्षा ही था। वनों में चोरी और अवैध कटाई की घटनाएं रोके नहीं रुक रही थीं। दूसरे जंगल में आग बड़ी समस्या थी। यह आग महुआ के फूल के चक्कर में वनवासी ही लगाते थे। अब जब उन्हें ही सुरक्षा की जिम्मेदारी दी गयी, तो उसमें कमी आना लाजिमी था। फिर बकौल राठौर उसके उत्पादों पर भी तो उसीका अधिकार हो गया है। एक और काम था उजाड़ जंगलों या बिगड़े वनों को हरे-भरे बनाना। इस पर भी जेएफएम के तहत खासा काम हुआ। वनों का इलाका बढ़ाने में उसकी खास भूमिका रही है। जगह-जगह बिगड़े वनों को सुधारने में वन समितियों की मदद ली गयी। उसकी साफ-सफाई कर वहां बांस लगाये गये। बीच-बीच में रोशा घास लगायी गयी। और फिर भी जगह बच गयी, तो वहां आंवला लगा दिया।

जेएफएम और वन समितियों के आने के बाद उससे जुड़े गांवों में बदलाव आ रहा है। बरेठा वन समिति की उपाध्यक्ष गजरीबाई का

खास-खबर

कहना था कि पहले साल में तीन-चार महीने पूरा का पूरा गांव मजदूरी की तलाश में दूसरे जिलों में चला जाता था। सिर्फ बूढ़े लोग ही रह जाते थे। वन वालों ने मिल कर जबसे ये काम किया है, तब से थोड़े से लोग ही गांव छोड़ कर जाते हैं। यही बात लौट फिर कर लगभग हर गांव में सुनने को मिली। मसलन बरेठा में 102 घर हैं। बरसात के आसपास ही यह पलायन होता था। इस साल उस गांव से दस फीसदी लोग भी काम की तलाश में नहीं गये। तहसील शाहपुर के गांव कुप्पा के उपसरपंच रामदयाल अखंडे ने कहा कि साब, बाहर रहने पर जितना मिलता है, उसका आधा भी इधर मिल जाये तो कोई कहीं नहीं जाये। पहले उनका भी पूरा गांव होशंगाबाद चला जाता था। एक फर्क कर्ज के मामले में पड़ा है। कर्ज लेना और उसमें डूबे रहना ही उनकी मजबूरी थी। लेकिन अब हालात वही नहीं हैं। भौराढाणा के रामा उइके का कहना था कि अब तो समिति से कर्ज मिल जाता है। पहले महाजन से लेना पड़ता था। वह दस रुपये सैकड़े पर देता था। समिति दो रुपये सैकड़े पर देती है। फिर समिति को जो हम ब्याज देते हैं, वह भी हमारे ही काम आता है। कुछ लोगों ने दबी जुबान यह भी कहा कि समिति के कर्ताधर्ता अपने लोगों में ही लोन देते हैं। महिलाओं के मामले में अभी बहुत कुछ होना बाकी है। आदिवासी महिलाओं में परदा नहीं है। उसकी वजह से हिस्सेदारी में दिक्कत नहीं आती। हर घर से एक महिला गांव वन समिति में रहती है। कार्यकारिणी में भी कम से कम दो महिलाएं होनी चाहिए। लेकिन इतने से ही काम नहीं चलता। अहम फैसले लेने में उनकी भागीदारी न के बराबर है। महिलाओं के अध्यक्ष बनने को लेकर भी खासी तनातनी है। एक महिला वन समिति की अध्यक्ष हो गयी। अब समिति का खाता अध्यक्ष और गार्ड संयुक्त रूप से चलाते हैं। जाहिर है उन्हें साथ- साथ जाना भी पड़ता था। पति को लगा कि गार्ड उसकी पत्नी में कुछ ज्यादा दिलचस्पी ले रहा है। एक दिन उसने अपनी पत्नी को तो पीटा ही गार्ड को भी मारा-पीटा। उसके बाद वह समिति ही ढह गयी। आमतौर पर गार्ड नहीं चाहते कि कोई महिला अध्यक्ष हो। एक गार्ड ने कहा कि महिलाओं को लेकर बेकार की चर्चाएं होने लगती हैं, उससे काम पर असर पड़ता है।

जेएफएम आने के बाद बच्चों की पढ़ाई पर भी असर पड़ा है। खामला की सुमन का कहना है कि अब हर घर से बच्चे पढ़ने जा रहे हैं। हर गांव में पढ़ाई को ले कर माहौल बन रहा है। बैतूल में एनजीओ वर्ल्ड विजन के मैनेजर लोकेश मालवीय मानते हैं कि अब घर-घर से बच्चा पढ़ने जा रहा है, लेकिन बीच में ही छोड़ देने का औसत बहुत ज्यादा है। यह औसत सही-सही कितना है। कहना मुश्किल है, क्योंकि बच्चे पढ़ने नहीं आते और उनका नाम नहीं कटता। लेकिन अब नयी पीढ़ी बच्चों को पढ़ाना चाहती है।

(सीएसई मीडिया फेलोशिप के तहत किया गया शोध)